Volume-08
Issue-01
January-2021

ISSN: 2349-7637 (Online)
RESEARCH HUB International Multidisciplinary Research Journal
https://rhimrj.co.in/ [Peer-Reviewed Journal]

राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य का सांस्कृतिक पक्ष

अरूण माधीवाल

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 15 January 2021

Keywords
यात्रा साहित्य, सांस्कृतिक, किन्नर, जौनसार, लोकनाट्य।

ABSTRACT

मनुष्य स्वभावतः प्रगतिशील प्राणी है। अपनी बुद्धि के द्वारा मनुष्य अपने आस–पास की प्राकृतिक परिस्थिति को निरन्तर सुधारता एवं उन्नत करता है। इस जीवन पद्धति में आचार–विचार, रीति–रिवाज़, रहन–सहन के माध्यम से वह उच्च दर्जा प्राप्त करता है। मनुष्य की इस मानसिक क्षेत्र की प्रगति से ही उसकी संस्कृति का परिचय होता है। संस्कृति मानव के शारीरिक और मानसिक संस्कारों का सूचक है अर्थात् संस्कृति से अभिप्राय मानव समाज के संस्कारों का परिष्कार और परिमार्जन है जो कि एक सतत् सर्जन प्रक्रिया है। राहुल सांकृत्यायन का यात्रा साहित्य भी देश–विदेश की सांस्कृतिक सम्पदा से भरा हुआ है। विभिन्न देशों की संस्कृति का स्पष्ट एवं विस्तृत वर्णन राहुल जी के यात्रा साहित्य में देखने को मिलता है। देश–विदेश के लोगों के आचार–विचार, रहन–सहन, रीति–रिवाज, वेशभूषा, पर्व–परम्पराओं के माध्यम से राहुल जी ने अपने यात्रा साहित्य को सांस्कृतिक रूप से सम्पन्न बनाया है।

राहुल सांकृत्यायन का यात्रा साहित्य सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के साथ विदेशी संस्कृति को भी अपनी यात्रापरक कृतियों के माध्यम से प्रकाश में लाने का प्रयास किया है। भारतीय यात्राओं से सम्बन्धित कृतियों में उस समय के भारत की सांस्कृतिक परिस्थितियों का उल्लेख मिलता है। तिब्बत, चीन आदि यात्राओं से उस समय की विदेशी संस्कृति को उजागर करने का प्रयास भी किया है। 'किन्नर देश में,' 'गढ़वाल', 'कुमाँऊ', 'जौनसार देहरादून', 'दोर्जेलिंड. परिचय' एवं 'हिमाचल' राहुल जी की हिमालय यात्राओं से सम्बन्धित रचनाएँ हैं। इन रचनाओं में हिमालय की सांस्कृतिक परिस्थिति का उल्लेख हुआ है। 'किन्नर देश में' नामक कृति में भी पहाड़ी लोक संस्कृति का विस्तृत वर्णन किया गया है। 'किन्नर देश में' राहुल जी ने किन्नरों के लोकभाषा, त्योहार, लोकगीत, विभिन्न रीति–रिवाज़ों का सविस्तार वर्णन किया है। इन किन्नरों में देवी–देवताओं की बहुत अधिक मान्यता है। इसके बिना ये अपना कोई भी कार्य नहीं करते हैं। राहुल जी लिखते हैं– "किन्नर देवताओं का देश है, आलंकारिक नहीं सीधी भाषा में।"[1]

देवी–देवताओं के नाम पर यहाँ आए दिन पर्व मनाया जाता है। राहुल जी लिखते हैं– "किन्नर देश में देवता न मिट्टी–पत्थर के हैं, और न निष्क्रिय निर्जीव। वह विमानों पर ही सोते हैं और विमानों पर ही टहलने के लिए निकलते हैं। विमान गंगाछवों छोटी सी खुली पालकी जैसा होता है, जिसके भीतर से पाँच हाथ लम्बी भुर्ज की सीधी बल्ली डाली जाती है, जो स्प्रिंग की तरह लचकती है। इसी विमान के बीच में लकड़ी कमचियों से कुछ ऊँची–सी जगह बना दी जाती है, जिस पर रेशमी कपड़ा टाँक कर चाँदी या गंगा–जमुनी चेहरे चिपका दिए जाते हैं। यही देवता हैं।"[2]

देवता के बारे में विस्तृत वर्णन करते हुए राहुल जी लिखते हैं– "गाँव के दुःख–सुख और हरेक काम में देवता की राय लेना जरूरी है। देवता कभी किसी के सिर पर आ करके बातें करता है, कभी चिट्ठी डालने पर अपना निर्णय देता है, पर सबसे अधिक वाहनों के कंधे पर चढ़कर विमान के हिलने के संकेत से बात करता है। यदि विमान पूछने वाले के सामने की ओर झुका, तो उसका अर्थ हाँ है, यदि दूसरी और झुका तो नहीं। यदि ऊपर–नीचे उछला तो बहुत अच्छा, और अत्यधिक उछला तो देवता नाराज हैं।"[3]

हिमाचल के विभिन्न प्रान्तों के लोगों की वेश–भूषा में भिन्नता है। 'जौनसार देहरादून' में देहरादून जिले के पुरुषों और स्त्रियों की पोशाक पर प्रकाश डालते हुए लिखा है– "जौनसारी पुरुषों की पोशाक पास के टेहरी के इलाकों वाले लोगों जैसी पायजामा और ऊपर अंगरखा अब कोट कमीज भी होती है। स्त्रियाँ अपनी पुरानी पोशाक को अब भी कायम किए हुए हैं वह नीचे लहँगा पहनती हैं, ऊपर किनारा लगे हुए सामने फटा कोट होता है, जो कुछ–कुछ 5वीं 6वीं सदी के कूचा (चीन मध्य एशिया) की स्त्रियों जैसा होता है। सिर पर वह रूमाल बाँधती हैं। ज़ेवर अधिकतर चाँदी के होते हैं। नाक में बड़े नथ और नथुने के बिचले छेद में पत्ते वाली बुलाक होती है। नाचने–गाने से उन्हें बड़ा प्रेम है।"[4]

किन्नर लोगों की आभूषण प्रियता पर भी उन्होंने प्रकाश डाला है– "सभी स्त्रियाँ चाँदी के जेवरों से लदी थीं। कानों में पाव–पाव भर चाँदी की कलियों के गुच्छक, कंठ में जंजीरें और मालाएँ, बाँयें कन्धों के नीचे दोरू (पहाड़ी ऊनी

साड़ी) को समेट कर बाँधने वाले हथेली भर के मयूर–चित्रक शोभा दे रहे थे। पीठ पर पतली रस्सी की तरह बटे केशों के लम्बे फूँदने पेंडुली के पास तक लटक रहे थे। फूँदने अधिकतर लाल सूत के थे, किन्तु कुच में चाँदी के घुँघरू बाँधे हुए थे। साड़ी का चुनाव किन्नरियाँ मध्य देशिकाओं की भाँति आगे नहीं, पीछे रखती हैं और कोली साड़ी के इस छोर को बुनने में अपनी सारी कला और सारे रंग को खर्च कर देते हैं।"[5]

संभ्रांत कुलीन महिलाएँ चाँदी के बालियों के गुच्छकों की जगह सोने की बालियाँ पहनी हुई थीं। पहाड़ी लोग बड़े उत्सवप्रिय हैं। वहाँ कई प्रकार की मेलायें होती थी। फसल काटते समय या देवताओं के उत्सव के समय वहाँ के लोग एक जगह जमा होकर मेलायें मनाते थे। ये सभी बातें वहाँ की सांस्कृतिक परिस्थिति की ओर इशारा करती हैं। किन्नर देश की यात्रा में वहाँ के लोगों की वेशभूषा एवं खान–पान का विस्तृत वर्णन अपनी कृति 'किन्नर देश में' में राहुल जी ने किया है। राहुल जी किन्नर लोगों की वेशभूषा के बारे में लिखते हैं– "स्त्रियाँ ऊर्ण सारी पहने थीं। हाँ, ऊर्ण सारी को ऊनी साड़ी न मान लीजिए, यह काफी लम्बा–चौड़ा–पतला कम्बल होता है। जिसे स्त्रियाँ दाहिना कंधा खोले काँटें से इस प्रकार पहिनती हैं कि सिर को छोड़कर सारा शरीर ढक जाता है।. . . . कोची स्त्रियाँ सिर पर रूमाल बाँधती है, किन्तु किन्नरियाँ अपने पुरूषों की भाँति टोपी लगाती हैं। जिसके तीन भाग में उठे हुए कनपटे जाड़ों में नीचे गिरकर कनटोप का काम देते हैं।"[6]

हिमालय के लोगों की रहन–सहन एवं खान–पान में काफी विभिन्नताएँ हैं। जाड़ों के सबेरे वे लोग भोजन के साथ दही या मट्ठा खाते हैं और रात को रोटी। गर्मी के दिनों में मक्की के सत्तु के खाने का रिवाज़ है। किसान लोगों के भोजन के बारे में उनकी राय है– "किसान दिन में तीन या चार बार खाना खाते हैं। सबेरे के वक्त गगूटी, मध्याह्न में चौलाई और मंडुवा की रोटी तथा रात को चावल या चपाती खाते हैं। सबेरे के भोजन को वहाँ जठालनू, मध्याह्न के भोजन को चेहती और शाम के भोजन को विचालू कहते है। गर्मियों के दिनों में दो–तीन बार लोग सत्तू खाते हैं। साँई और घरथी इलाके के लोगों का मुख्य भोजन सत्तू है। वहाँ मक्की के आटे की रोटी भी खाई जाती है। मांस, मछली सभी खाते हैं।"[7]

राहुल जी की कृति 'हिमाचल' और 'किन्नर देश में' में उन्होंने विशेष रूप से पहाड़ी लोक संस्कृति का वर्णन किया है। वहाँ लोकगीत, लोकभाषा तथा विभिन्न मान्यताओं और देवी–देवताओं का वर्णन किया है, हिमाचल की संस्कृति के बारे में राहुल जी लिखते हैं–

"सांस्कृतिक रूप बहुत मोहक है। रहन–सहन, रीति–रिवाज, मेले त्योहार सब मिलकर हिमाचल की एक विशेष जीवन संस्कृति का दर्शन कराते हैं।"[8] पहाड़ों में देवी, देवताओं की बहुत मान्यता होती है, साथ ही ये लोग देवी, देवताओं को लेकर बहुत सारी मान्यताएँ और रिवाज़ बनाए हुए हैं। तिब्बत यात्रा से सम्बन्धित पुस्तकों में तिब्बत की सांस्कृतिक परिस्थिति का उल्लेख हुआ है। वहाँ के लोगों की वेश–भूषा, रीति–रिवाज़, त्योहार आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। तिब्बत में शत–प्रतिशत लोग मांसाहारी हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने 'यात्रा के पन्ने' में विस्तार से बताया है। वहाँ मांस उतना सुलभ तो नहीं है फिर भी बड़े–बड़े घरों में सूखा मांस हमेशा तैयार था। सूखे मांस के दो एक टुकड़े एक ऊँचे पाव की तस्तरी पर रखकर नमक और चाकू के साथ मेहमान को खाने के लिए रख दिया जाता है। यह वहाँ के लोगों के लिए सबसे प्रिय भोजन है, भोजन में विचित्रता देखने के साथ तिब्बती लोगों के त्योहारों मे भी विशिष्टता है। वहाँ का सबसे बड़ा उत्सव है नववर्षोत्सव, जो 30 जून को मनाया जाता था। इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है– "30 जून को यहाँ पर भी अब तिब्बती नववर्ष मनाया जा रहा था। ल्हासा में तो नववर्षोत्सव सबसे बड़ा उत्सव है। यहाँ पर भी लोग नये–नये कपड़ों से सज–धज कर ध्वजा–पताका ले घोड़ों पर चढ़ निकले। स्त्रयाण भी तमाशा देखने गयी थी। दलबल सहित दोनों महलों के स्वामी पूरब के पहाड़ के पीछे गये, और वहाँ कितनी देर तक घोड़े और आदमी चक्कर काटते रहे। लोग शाम के पाँच बजे लौटे।"[9] वहाँ राहुल जी ने सक्य के नववर्षोत्सव का वर्णन किया था। वहाँ के बौद्ध विहारों का वर्णन करते हुए उन्होंने यही स्थापित किया कि उनमें अधिकांश भारतीय ही लगते हैं। अर्थात् भारतीय कला और कारीगरी के अनुसार ही वहाँ के मठों का निर्माण हुआ था। यह तिब्बती लोगों पर भारतीय संस्कृति के प्रभाव पर प्रकाश डालता है। लद्दाख और तिब्बत में पाण्डव विवाह प्रथा प्रचलित थी अर्थात् सभी भाईयों के लिए एक ही पत्नी होना। ये सभी वहाँ की सांस्कृतिक परिस्थिति की ओर इशारा करती है।

'हिमाचल–1' नामक कृति में राहुल जी ने ब्राह्मणों और राजपूतों तथा अन्य जातियों में विधवा विवाह के बारे में इनकी मान्यताओं को स्पष्ट किया है– "ब्राह्मणों, राजपूतों, खान्नियों और बोहरों में विधवा–विवाह बिल्कुल मना है लेकिन कनेत और दूसरी जातियों में उसका खुला रिवाज़ है। कनेत और दूसरी जातियों की विधवाएँ यदि अपने मृत पति के घर में रहना चाहें तो दूसरे पुरूष के साथ रहते भी पूर्व पति की सम्पत्ति से वंचित नहीं होती हैं। ऐसी स्थिति के पुरूष को तिंडा या कोंस कहते हैं, और उससे जो पुत्र होता है, उसे गमरू या रिउँधा कहते हैं।"[10] हिमाचल के मंडी क्षेत्र में विवाह की अजीब तरह की विधियाँ प्रचलित हैं। वह भी कई तरह की जिसमें किसानों के एक नहीं कई प्रकार से विवाह पद्धति का वर्णन राहुल जी ने किया है।

विदेशों में कैसे–कैसे रीति–रिवाज़ हैं, कौन–कौन से लोक नृत्य, लोकगान प्रचलित हैं। इसका भी विवरण राहुल जी के यात्रा साहित्य में मिलता है। अपनी 'रूस की यात्रा' में उन्होंने वहाँ के लोकनृत्य और लोकनाट्य को देखा और वहाँ

के नृत्य 'बैले' ने राहुल जी को बहुत प्रभावित किया। सोवियत रंगमंच कितना अधिक उन्नत है यह भी उन्होंने बताया है। अपनी जीवन यात्रा में रूस की यात्रा के दौरान वहाँ के नृत्य और रंगमंच के बारे में लिखते हैं। "सोवियत का रंगमंच (तियात्र) जारशाही समय में भी बहुत उन्नत था, उसके वैले (मूक) नाट्य पहिले भी दुनिया में अद्वितीय माने जाते थे। जार की सरकार और उस समय का सामंत वर्ग जितना पैसा अपनी नाट्यशालाओं पर खर्च कर सकता था, उतना दुनिया का कोई देश खर्च नहीं कर सकता था, इसलिए आज से सौ–सवा सौ वर्ष पहिले ही से रूस का रंगमंच बहुत उन्नत हो चुका था। सोवियत काल में वह उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचा। पिछली डेढ़ शताब्दियों में प्रभावशाली नटों और नाट्यकारों ने जो–जो नाटक मास्को और पितरबुर्ग के रंगमंचों पर खेले, उन्हें आज भी बड़े सुन्दर रूप में खेला जाता है।"[11]

सोवियत में जब इस तरह नृत्य नाटकों का आयोजन किया जाता है तब वहाँ की स्त्रियाँ बहुत ही सज–संवरकर आयोजन में आती हैं। राहुल जी लिखते हैं– "जारशाही जमाने में स्त्रियाँ अपने बढ़िया से बढ़िया आभूषण वस्त्र और सज्जा के साथ आती थीं, आज भी नाटक देखने के समय सोवियत नारी अपने को अत्यन्त सुन्दर रूप में सजा–धजाकर वहाँ पहुँचती है। विश्राम के समय जब नर–नारी हाथ मिलाए बड़े हाल में मंद गति से एक–दूसरे के पीछे टहलते हैं, उस वक्त नये से नया फैशन और बढ़िया से बढ़िया सौन्दर्य–राशि को आप देख सकते हैं। रूस अपने बैले के लिए अद्वितीय है, सर्वोत्कृष्ट नृत्य और अभिनय देखना हो तो रूसी बैले को देखें।"[12]

जापानी खाने को लेकर राहुल जी कहते हैं कि बहुत फीका होता है। इस पर राहुल जी लिखते हैं– "पहिले जापानी खाना कुछ फीका मालूम पड़ता था, क्योंकि उसमें न तेल घी की बघार होती, न मिर्च–मसाला ही होता। मछली है तो नमक के साथ उबली हुई। साग है तो उसमें भी नमक पानी छोड़ और कुछ नहीं। सोचा के कई तरह के पकवान बनते हैं, किन्तु उनमें भी घी–तेल ही मिर्च–मसाले का नाम नहीं चावल उतना बारीक नहीं होता, न सुगंधित ही, लेकिन होता है मीठा।"[13] यहाँ जापानी खाने की विशेषता बताई गई है। एक और प्रमुख विशेषता जापानियों की है कि वे लोग जूठा नहीं छोड़ते हैं। राहुल जी को लम्बे समय तक रहने के बाद जापानी खाना पसन्द आया था।

संदर्भ–

1. राहुल सांकृत्यायन, 'किन्नर देश में', पृष्ठ संख्या 59
2. राहुल सांकृत्यायन, 'हिमाचल–2', पृष्ठ संख्या 101
3. राहुल सांकृत्यायन, 'हिमाचल–2', पृष्ठ संख्या 101
4. राहुल सांकृत्यायन, 'जौनसार देहरादून', पृष्ठ संख्या 95
5. राहुल सांकृत्यायन, 'किन्नर देश में', पृष्ठ संख्या 11
6. राहुल सांकृत्यायन, 'किन्नर देश में', पृष्ठ संख्या 38
7. राहुल सांकृत्यायन, 'हिमालय, भाग–1', पृष्ठ संख्या 42
8. राहुल सांकृत्यायन, 'हिमालय, भाग–1', पृष्ठ संख्या 126
9. राहुल सांकृत्यायन, 'यात्रा के पन्ने', पृष्ठ संख्या 46
10. राहुल सांकृत्यायन, 'हिमालय, भाग–1', पृष्ठ संख्या 130
11. राहुल सांकृत्यायन, 'मेरी जीवन यात्रा–3', पृष्ठ संख्या 64
12. राहुल सांकृत्यायन, 'मेरी जीवन यात्रा–3', पृष्ठ संख्या 82
13. राहुल सांकृत्यायन, 'मेरी जीवन यात्रा–2', पृष्ठ संख्या 203